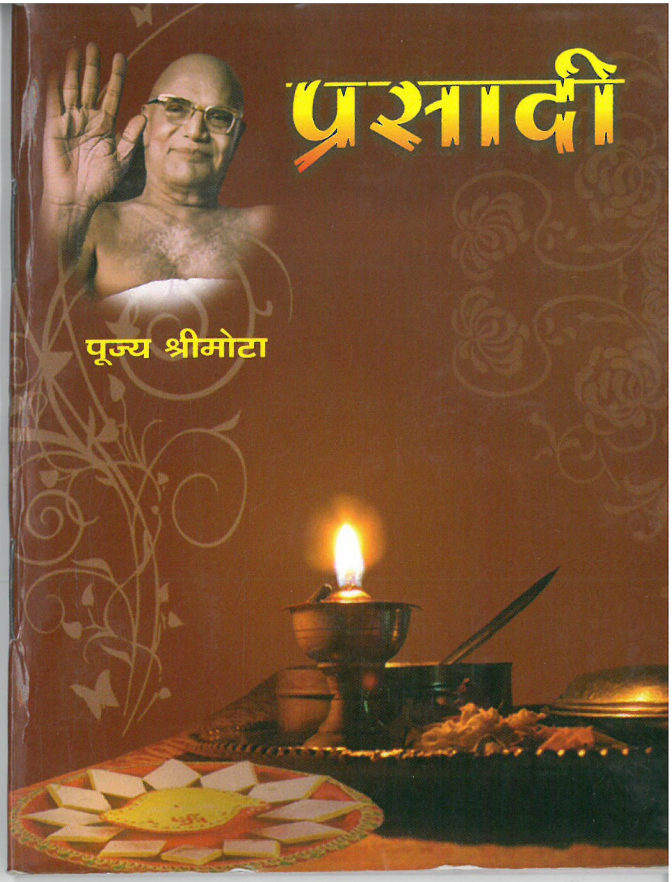
प्रसादी
पूज्य श्रीमोटा

हरिः ॐ

# प्रसादी

## पूज्य श्रीमोटा


—: प्रकाशक :—

**पू. श्रीमोटा हरिः ॐ आश्रम**

कुरूक्षेत्र महादेव मंदिर के पास, जहांगीरपुरा,

रांदेर, सूरत-३९५००५.

दूरभाष : (0261) 2765564, 2771046

E-mail : hariommota1@gmail.com

हरिः ॐ

# प्रसादी
# पूज्य श्रीमोटा

हिन्दी भावानुवाद : बाबा गोपालदास

प्रथम हिन्दी संस्करण, १७०० प्रतियाँ

—: मूल्य :—

रु. ५/-

—: प्राप्ति स्थान :—

हरिः ॐ आश्रम
सूरत - नडियाद

हरिः ॐ

## विनम्र निवेदन

पूज्य श्रीमोटा, गुजरात के बीसवीं सदीके एक विलक्षण महान संत हुए हैं। उन्होंने एक ओर मौनरूम की साधना द्वारा संसारी मनुष्योंको सतत आत्मविकास का मार्ग दिखलाया, वहीं दूसरी ओर समाज को जागृत बनाने के लिये विविध प्रवृत्तियां आरंभ की। हमारे देश तथा विदेशों में भी उनके अनेक अनुयायी, उनके उपदेशानुसार, अपना आत्मविकास करते हुए, समाज के उत्थान के कार्यों में बड़ा योगदान दे रहे हैं। उनके अनुयायियों ने उनके उपदेशों की अनेकों पुस्तकें साधकों के हितार्थ गुजराती भाषा में प्रकाशित की हैं।

पूज्य श्रीमोटा ने अपने गुरू महाराज की आज्ञा पालनार्थ, सन् १९५५ में नडियाद में और सन् १९५६ में सूरत में, जनसमाज के सहयोग से शौचालय व स्नानगृह युक्त कमरे (मौनरूम) बनवाये। यह स्थान हरिः ॐ आश्रम के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें अन्दर-बाहर खुलनेवाली बड़ी खिडकी

रखी गई हैं। साधक को मौन में इस कमरे में बन्द कर दिया जाता है। ऐसी साधना एक सप्ताह, दो सप्ताह या अधिक समय के लिये होती है। अन्दर-बाहर खुलनेवाली बड़ी खिड़की से बाहर से भोजनादि रख कर, बन्द कर, सेवा करनेवाला हरि ॐ कहता है, तब साधक अन्दर से खिड़की खोल कर समय पर भोजनादि ले लेता है। इस प्रकार मौनरूम में साधना की जाती है। स्वतंत्र-रूपसे आत्मविकास का यह एक अनूठा मार्ग है।

सन् १९८८ ईस्वी में वृंदावन से नर्मदातट, मंगलेश्वर गांव आने के बाद, साधक जीव बाबा गोपालदास, पू. श्रीमोटा के साहित्य से अंशत: परिचित हुए। प्रयास पूर्वक गुजराती भाषा सीख करके पू. श्रीमोटा के साहित्य का पूर्ण अध्ययन किया। मौनमंदिर का लाभ लिया एवं अपने निवास में भी ईसी प्रकार से साधना में व्यस्त रहे। अंत: स्कुरणा से पू. श्रीमोटा के गुजराती पुस्तक का हिन्दी-भाषा भावानुवाद के कार्य में सेवक बने। पू. श्रीमोटा के स्वजन श्री यशवंतभाई पटेल ने यह



पुस्तिका का हिन्दी-भाषा भावानुवाद करने के लिए उनको प्रेरित किया। अपनी अंत: भावना का कार्य आपने अत्यंत परिश्रम एवम् सतर्कता-पूर्वक कम से कम समय में पूर्ण किया हैं। इसके लिये हम आपके अत्यंत आभारी हैं। यह पुस्तक अपने आप ही भावस्वरुप है।

मूल गुजराती पुस्तिका के प्रकाशक पारीजा हरि शेरदलाल के आदरणीय बुजुर्ग सद्गृहस्थ मा. श्री इन्दुकाका ने ईस पुस्तिका के हिन्दी भावानुवाद व प्रकाशन हेतु सहर्ष अनुमति प्रदान की है, हम उनके अत्यंत आभारी है।

हिन्दी भाषा के विद्वान डॉ. घनानंद जी शर्मा ने ईसका संशोधन (Proof Reading) किया है। हम उनके भी आभारी हैं। इस कार्य की प्रेरणा देने के लिए हम यशवंतभाई पटेल के प्रति भी हमारा आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य श्रीमोटा के उपदेशों की छपी विविध पुस्तकों से पूज्य श्री के परिकर श्री बाबुभाई रामी द्वारा इन विचारों को पुस्तिका

के रूप में गुजराती भाषा में संग्रहीत किया गया हैं।

श्री बाबुभाई रामी ने इसी प्रकार कई पुस्तिकायें गुजराती भाषा में संकलित कर, पूज्य श्रीमोटा तथा उनके साधकों की बड़ी सेवा की है। इस संकलन का कुशल संपादन डॉ. कांति रामी तथा डॉ. कांतिभाई नावडिया ने किया हैं। यह पुस्तिका उसी मूल गुजराती भाषा की पुस्तिका का हिन्दी-भाषा भावानुवाद है।

इस पुस्तिका के निर्माणकार्य में सहयोगी तमाम नामी-अनामी स्वजनों के भी हम आभारी हैं।

आशा है, इस हिन्दी पुस्तिका के जरिए, भारतवर्ष में पू. श्रीमोटा का संदेश सांसारी मनुष्यों के जीवन में मार्गदर्शक बनता रहेगा।

दिनांक : ०४-०९-२००९ ट्रस्टीगण

पू. श्रीमोटा का १११ वां जन्मदिन हरिः ॐ आश्रम, सूरत



## मुझे समाज को समर्थ बनाना है

हमारे देश में, हमारे समाज में मर्दानगी, साहस, हिम्मत आदि न होंगे तो हमारा देश आगे कैसे बढ़ेगा ?

आज समाज में सद्‌गुण, सद्‌भाव का अभाव होता जा रहा है। उसे दूर करने का प्रयास ही सच्ची समाज सेवा है। **समाज में सद्‌गुण, सद्‌भाव प्रकटे बिना धर्म टिकेगा नहीं**। पंचमहाभूतों से बने स्थूल शरीर के नाश होने पर, **गुण और भाव सूक्ष्म शरीर के साथ दूसरे जन्म में जाते हैं। इसलिये सद्‌गुण, सद्‌भाव के विकासार्थ प्रवृत्ति का दान ही श्रेष्ठ दान है।**

**– मोटा**

हरिः ॐ

# विषय सूची


| क्रम | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| १ | श्री सद्गुरू | १ |
| २ | संस्कार | २ |
| ३ | विचार | ३ |
| ४ | प्राण | ६ |
| ५ | अहम् | ८ |
| ६ | बुद्धि | ९ |
| ७ | मन | १२ |
| ८ | ध्येय | १५ |
| ९ | प्रार्थना | १७ |
| १० | नाम-स्मरण | १९ |
| ११ | मनन-चिन्तन | २१ |
| १२ | कर्म | २२ |
| १३ | अन्तर्मुखता | २४ |
| १४ | संयम | २६ |
| १५ | जागृति | २८ |
| १६ | तीव्र उत्कंठा | ३० |
| १७ | निश्चय | ३१ |
| १८ | संकल्प | ३२ |
| १९ | तटस्थता | ३३ |
| २० | आत्म-विश्वास | ३४ |
| २१ | अभ्यास | ३५ |
| २२ | वैराग्य | ३७ |
| २३ | आत्म-निवेदन | ३८ |
| २४ | समर्पण-भाव | ३९ |
| २५ | शरण-भाव | ४० |
| २६ | त्राटक | ४१ |
| २७ | श्रद्धा | ४२ |
| २८ | एकाग्रता | ४३ |
| २९ | ध्यान | ४५ |
| ३० | भाव | ४६ |
| ३१ | प्रेम | ४७ |
| ३२ | सद्गुण सद्भाव का आदर | ४८ |
| ३३ | दुर्लभ मानव शरीर | ४९ |
| ३४ | मृत्यु के बाद जीवात्मा | ५० |
| ३५ | विनयवाणी | ५२ |
| ३६ | आरती का पद्यमें भावानुवाद | ५३ |
| ३७ | आरती का भावार्थ | ५६ |
| ३८ | भावांजली | ६० |

हरिः ॐ

## श्री सद्गुरू

श्री सद्गुरू किसी शरीर को या उसकी तेजस्विता को नहीं कहते हैं। श्री सद्गुरू उस ज्ञानशक्ति को कहते हैं जो विश्व की हर वस्तु कैसे और क्यों किसी परम-चेतन शक्ति के साथ जुड़ी है, यह समझा सके। यही वास्तव में चेतना का लाक्षणिक अंग है।

सद्गुरू को मात्र जानने से एवं साथ रहने से, विषेश लाभ नहीं है। सामान्य मानव को श्री सद्गुरू से निस्वार्थ प्रेम होना एक दुर्लभ घटना है। श्री सद्गुरू की भाव-चेतना शक्ति ही हमारा साधन है।



हरिः ॐ

## संस्कार

हमारी विचारवृत्ति ही हमारे संस्कारों में परिणित होती है। निश्चित रूप से वैसे ही परिणाम हमें मिला करते हैं।

संत-समागम के संस्कार, एक न एक दिन अवश्य ही अंकुरित होते हैं। वे संस्कार मानव को उर्ध्व चिन्तन में रखते हैं जिससे चित्त के सामान्य संस्कारों का जोर नहीं चलता है।

हमारा चित्त एक सक्रिय केमेरा जैसा है। उसमें जो संग्रहीत हैं, वही हमारे संस्कार हैं। वे संस्कार ही कालान्तर में अंकुरित हो कर बाहर आते हैं तथा वृत्ति कहलाते हैं।

## विचार

योग्य विचार बहुत शक्तिशाली होते हैं। उनकी सर्जकशक्ति, इच्छित परिणाम लाने हेतु अनुकूल परिस्थिति का निर्माण कर सकती हैं । विचारों का प्राबल्य जीवन में, आचरणों में रद्दोबदल कर देता है।

हम ही विश्व हैं तथा हममें ही सारा विश्व बसा है। हम जिस प्रकार के विचार करते हैं, उसी प्रकार के विचार घूमकर पुनः हम में समाते रहते हैं । इसलिये नकारात्मक विचार जितने कम हों उतना ही अच्छा, अन्यथा पुनः वे विचार दुगुने जोश तथा दुगुनी गति से हममें प्रविष्ठ हो कर ज्यादा नुकसान करेंगे।

विचारों से मिलती समझ, भावनाओं की समझ





तथा व्यवहार में क्रियान्वित समझ, अलग अलग हैं। हमें विचार, भावना तथा क्रियाकलापों में सुमेल रखना चाहिए। विचार कुछ हैं, भावनाऐं कुछ और हैं तथा क्रियाकलाप कुछ और ही हैं, ऐसा बेहूदा जीवन लोग जी रहे हैं।

यदि कोई विचार दृढ़ हो कर हटते न हों तो उसका उपाय करें। ऊँचे स्वर में नामस्मरण करें, भगवान की प्रार्थना करें, किसी प्रिय भजन का रटन, मनन-चिन्तन करें या किसी संतपुरुष में लगन लगी हो तो उसका स्मरण करें।

तेजी से आनेवाले किसी विचार को वैसी ही या ज्यादा तेजी से रोकने का प्रयास न करें। ऐसा करने से शायद थोड़े समय तक विचार प्रवाह रुक जाये मगर

कार्य सिद्ध न होगा। हमें तो उन्हें समझने का प्रयत्न करना चाहिए। ये विचार क्यों आते हैं ? उनका मूल क्या है ? प्रथम कदम के रूप में विचारों को देखने का अभ्यास करें। दूसरा कदम यह है कि उनकी कड़ियां मत जोड़ो। तीसरा कदम है कि साक्षी-भाव रखो। ऐसा करने से अपने में उठनेवाले विचार प्रवाह को देख पावोगे। इसी से वह विवेक-शक्ति जगती है, जो यह भान करावेगी कि विचार सकारात्मक हैं या नकारात्मक। नकारात्मक को इन्कार करने का बल भी इसी से मिलता है।

अपना विचार अपने जीवन-विकास का हेतु है। अतः अपना बुरा विचारने वालों के लिये भी उत्तम से उत्तम विचार रखें।

## प्राण

यदि विचार पूर्वक देखें तो बुद्धि और प्राण ये दो तत्व हमारे अंदर कार्यरत हैं। बुद्धि से विचार तथा प्राण से क्रिया होती हैं।

हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् में प्राण सबसे आगे हैं। प्राण-तत्व में ही आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता, लोभ, मोह है। सभी क्रियाएं प्राण को लेकर हैं। काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर, खाना-पीना, पसंद-नापसंद, राग-द्वेष ये सब प्राण-तत्व के कारण हैं। संसार व्यवहार में बुद्धि की बनिस्पत प्राण-तत्व आगे है। यदि अध्यात्म मार्ग से जाना हो तो प्राणतत्व तथा बुद्धि दोनों को गलाना होगा। जीवदशा में हमारा संचालन प्राण से होता है। अतः प्राण आगे रहते हैं।

प्राण को सचेतन करने के लिए प्रचंड-इच्छाशक्ति (बर्निंग डिज़ायर) होनी चाहिए। भजन द्वारा, स्मरण द्वारा, दिनका कुछ निश्चित समय एक ही विषय में रमे रहने पर प्राण स्वतः उनमें लीन होता है। प्राण की लीनता से मनन-चिन्तन में प्रियता आने लगती है।

जब प्राण उर्ध्वगतिशील होता है तो स्वार्थ, काम, लोभ आदि कम होने लगते हैं। मेरापन जीर्ण होने लगता है। उर्ध्वगतिशील प्राण होने पर सद्‌गुण सद्‌भाव बढ़ते है। साहस, हिम्मत, तटस्थता बढ़ते है। इन सद्‌गुणों का विकास होता है।

हमारे अन्दर अन्य मनुष्यों के लिये पूर्वाग्रह होता है। वह प्राण के कारण होता है। बुद्धि दूसरे क्रम पर है। अलग-अलग व्यक्तिओ के प्रति अलग-अलग प्रकार के भाव होना प्राण-तत्व का कारण है।

## अहम्

अपने अन्दर रहे हुए अहम्-तत्व के उर्ध्वीकरण के लिये, उसे सात्विक बनाने के लिये हमें उसे बहुत तीव्र आघात देना ही पड़ेगा। इसके लिये हमें जो मनुष्य अच्छे न लगते हों उसे प्रेम भाव से मिलना चाहिए। उनका काम करके उनका प्रेम संपादन करना चाहिए। हमें जिससे घृणा हो उसको अन्तःकरण के प्रेम से गले लगाना चाहिए। जिसे बुरा मानते हों चाहे वह आदमी हो या वृत्ति, उसका तिरस्कार मत करो। उनके लिये दिल मे प्रेम रखकर, जबभी प्रसंग आए तब तटस्थता एवं सहानुभूति की वृत्ति जुटाकर अपने स्वयं के सुधार का साधन समझकर प्राप्य संयोग का सद्‌उपयोग करो।

## बुद्धि

उत्कट जिज्ञासा प्रथम हकीकत है, दूसरी सद्गुरू और तीसरी है अपने स्वयं की शुद्ध जागृत बुद्धि एवं भाव। बुद्धि दो प्रकार की है। एक बुद्धि में अनेक प्रकार की समझ, अच्छी बुरी आदतों से युक्त अनेक रंगों में रंगी हुई वृत्ति है, जो निम्न प्रकार की बुद्धि है। दूसरे प्रकार की बुद्धि में सत्-असत् का विवेक जागृत है। अतः उसका अनेक प्रकार की समझ से छुटकारा हो जाता है। यही बुद्धि साधक के लिये उपयोगी है। प्रथम प्रकार की बुद्धि साधक के लिए अवरोधक है।

स्वभाव के पृथक्करण की बहुत आवश्यकता है। बुद्धि में स्वतंत्रता है, यह मान्यता भी भ्रम पूर्ण है।





अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों से बुद्धि रंगी रहती है। बुद्धि में अनेक प्रकार के संस्कारों की समझ, मान्यता वगैरह पड़े हुए हैं।

शुद्ध सात्विक बुद्धि, संपूर्ण रूपसे पक्षपात रहित तथा समत्व युक्त होती है। स्वयं से अलग रहकर जो प्रेरणात्मक समझ प्रकट होती है उसे मूलधर्म के स्वरूप में स्वीकार करती है। अतः इस प्रकार की बुद्धि मन द्वारा प्राण को संपूर्णरूप से शुद्ध बनाने में समर्थ होती है।

बुद्धि का सदुपयोग जीवनध्येय की प्राप्ति की अनुकूलता देखते रहने में है। इस मार्ग में आगे बढ़ने की इच्छा कैसे बढ़े तथा दृढ़ हो यह देखना है। अपने आसपास के वातावरण में जो घटनायें हो रही हों उनसे भी अनुकूलता कैसे उत्पन्न की जाये यह देखते रहने

में है। प्रतिकूलता का सजग हो कर त्याग करते रहना है। इस प्रकार बुद्धि का ज्ञानपूर्वक उपयोग करते रहना हैं। बुद्धि में समता प्रकट होने का नाम योग है।

हमारे आधार चेतना का सबसे नजदीकी अंग बुद्धि है।

जिसकी बुद्धि में शरणागति-भाव उत्पन्न हो गया है उसे बाद में जीवन के सभी क्षेत्रों में सजीव रूपसे प्रभु भाव रखना संभव हो जाता है।

अनेक प्रकार के आवरणों से हमारी बुद्धि आच्छादित है। उसमें तर्क-कुतर्क की आदत खुजली के समान है।

जहाँ बुद्धि स्पष्ट देख नहीं पाती वहां बोध (समझ) ग्रहण करने को प्रेरित होती है।

## मन

सामान्य व्यक्ति के लिये संसार छोड़ना संभव नहीं है। संसार ने हमें बांधा भी नहीं है। हम स्वयं संसार से चिपटे हैं। यह सब मन का खेल है। अतः मन की स्थिति को पलटने की आवश्यकता है। मन स्वतः पलटता नहीं है। इसके लिये साधना की आवश्यकता है। मेरी आपसे हृदय से प्रार्थना है कि मन को पलटने के लिये प्रभु नाम का प्रेमभक्ति, ज्ञानपूर्वक, सतत एवं अखंड स्मरण करें। यही प्रथम प्रमुख साधन है। दूसरा साधन यह है कि नित्य प्रति होते सभी कार्यों में श्री हरि की सजीव भावना तथा धारणा बनी रहे तदर्थ दृढ़तापूर्ण अभ्यास करें। तीसरा साधन यह है कि जीवन के सभी अवसरों

में समता, शांति, धीरज, तटस्थता तथा दूसरों के प्रति सद्भावपूर्ण सहानुभूति आदि सद्गुण बनाये रखना है।

मन में उठनेवाले विचारों के स्वरूप और उसके कारण को पहचानना हमें सीखना पड़ेगा। ऐसा करने पर जहां उसका नकारात्मक स्वरूप हो यानी कि जीवभाव (निम्नस्तर) का व्यवहार हो वहां उसे छोड़ने, त्यागने की महान हिम्मत हमें करनी होगी। प्रत्येक विचार के स्वरूप और उसके कारण को समझने की कला यदि हमें मिल गई तो उससे हमें बल और प्रेरणा की उपलब्धि होगी। हमें हमारे मन के साथ खेलते भी रहना है और उसकी मदद भी लेनी है।

मन अत्यन्त कुशल तथा शक्तिशाली है। यदि हम निश्चित होकर दृढ़तापूर्वक रचनात्मक रूपसे उसकी





मदद लेते रहें तो मन हमारा मित्र है। मन की शक्ति असीम है। सभी को जीतकर उससे एकाकार हो जाने की शक्ति मन में है। व्यर्थ की बातो में मन न लगावें। यदि कोई व्यर्थ की बातें करता हो तो करता रहे, हमें उसमें रुचि नहीं लेनी चाहिए।

मन को प्रोत्साहित करनेवाला जीव एक की एक दशा में नहीं रह सकता है। उसे नई-नई सूझबूझ मिलती रहती है। समस्याओं का हल और उस पर चलने की राह उसे सूझती है।

साधक को मन का सामना करना अनिवार्य है। स्वभाव पलटना जरूरी है।

## ध्येय

आपके सामने एक ध्येय होना चाहिए। वह ध्येय दृढ़ निश्चयपूर्ण होना चाहिए। चाहे जो हो मगर लक्ष्य पाना है, पाना है, पाना ही है, ऐसी दृढ़ता के बिना आगे बढ़ना संभव नहीं है।

बहुत कम लोग, ध्येय रखते हैं। वे अपने लौकिक जीवनमें भी ध्येय नहीं रखते हैं। सामान्य मनुष्य बहुत धीमी गति की बैलगाड़ी जैसा सुस्त जीवन जीता है। अत: जीवन में ध्येय रखो। ध्येय बिना जीवन व्यर्थ है। ध्येय के कारण आपमें एकाग्रता आयेगी। यह एकाग्रता आपको उर्ध्वगति में ले जावेगी।

ध्येय होने पर एकाग्रता आती है। वह एकाग्रता रुके बिना विस्तरित होती है। वही आपको उर्ध्व में ले





जाती है।

जब एकाग्रता उर्ध्व जीवन की तरफ मुड़ती है तो थोड़ा आगे जाने पर उसमें सजीवता आती है। तब ध्येय प्राप्ति के लिये तड़प उठती है। तीव्र उत्कंठा होती है। इस तीव्र उत्कंठा के कारण वह अन्य विषय की ओर जा ही नहीं सकता है। यह उत्कंठा तथा तड़प असह्य होती है। उसका (साधक का) शरीर टूटने लगे एसी तड़प होती है।

ध्येय युक्त जीवन का प्रत्यक्ष लक्षण प्रसन्नता है। प्रसन्नता जीवन को सहज तथा सरल बनाती है। मुश्किलों का हल सरलता से होता है।

## प्रार्थना

प्रार्थना चित्तशुद्धि का उत्तम साधन है। जैसे शरीर तथा वस्त्र पानी से धोने पर उनका मैल दूर होता है, वैसे ही अन्तःकरण से प्रभु प्रार्थना करने पर मन का मैल दूर होता है।

थोड़ी भी कठिनाई हो तो प्रार्थना करो। कार्य करते हुए भी प्रार्थना करो। प्रार्थना असाध्य को साधने में सक्षम है।

प्रातः सायं नियमित प्रार्थना करते रहना चाहिए। कम से कम तीन वक्त, रात्रि को सोते समय, प्रातः उठते समय तथा अन्य एक समय प्रार्थना करें।

सिर्फ वाचिक प्रार्थना तेजस्वी नहीं होती हैं। अन्तर-वेदना युक्त प्रार्थना में ही आर्तनाद होता है।





प्रार्थना करते वक्त अपना लक्ष्य हृदय पर रखे। प्रार्थना का हेतु क्या है ? बार-बार प्रार्थना निवेदन करने से उससे अन्तर्चेतना का संबन्ध होता है। इस प्रकार अभ्यास होने पर बार बार प्रार्थना उठती रहती है। प्रार्थना की जुड़ी हुई कड़ियाँ परमात्मा से जोड़नेवाली कड़ी बन जाती है। यह एक महान साधन है। प्रार्थना की गहराई भाव की वृद्धि करती है। भावपूर्वक प्रार्थना होने पर जीवन भार रहित हो जाता है।

## नाम स्मरण

जप छोटे से नाम का होना चाहिए। शब्दोत्पत्ति तीन स्थानों से होती है यथा नाभि, कंठ और मूर्धन्य। इन तीन स्थानों से उठने तथा तीनों को भेदनेवाला शब्द ॐ है। ॐकार में समस्त ब्रह्मांड समाया है। हृदय से होनेवाला एकधार जप ज्ञानतंतुओं को सजीव बनाता है। इससे समता, शांति आदि भाव उत्पन्न होते हैं। उस प्रकार की शांति उच्चत्तम होने पर शरीर के रोगों के निवारण की शक्यता प्रकट होती है।

नामस्मरण चाहे शुष्कतापूर्ण लगे तो भी करते रहना चाहिए। जप संतोष जनक न लगे तब हमारा मन किसी अन्य विषय में फंसा है, ऐसा समझना चाहिए।





नामस्मरण उसके लक्ष्य की सजगता के साथ सजीव रहे तो सार्थक होता है। यंत्रवत रटन या भजनगान का महत्त्व नहीं है।

हरि से बड़ा हरि का नाम है। नाम नामी का परिचय कराता है। पहले नाम से परिचय नहीं होता है। ज्ञानपूर्वक नाम रटने से रस प्रकट होता है। यह बात अनुभव में आती है। अमूर्त निराकार नामी तो बीज की तरह है। नाम का खूब रटन हो, एसा जरुरी नहीं है। सामान्य मनुष्य के लिये नाम आश्रयरूप है। मगर नाम के साथ भाव जागृत हों और सतत बना रहे तब नामी का परिचय होता है। अतः नाम, नामी से बड़ा कहा गया है।

हरिः ॐ

## मनन-चिन्तन

सामान्य मनुष्य को संतपुरुष या सद्-आत्मा की चेतन अवस्था की समझ तो नहीं होती है, मगर उनके विचारों का पठन-मनन बारंबार होता रहे तो वह अन्य स्थूल जगत के विचारों से उत्तम है।

यहां मनन का अर्थ है कि मन में, मन के द्वारा प्रभुस्मरण की भावना से एकाकार होने को सतत प्रयत्नशील होना। चिन्तन का अर्थ है कि हर क्षण जीवन विकास का आदर्श दृष्टि में रहे ऐसी मानसिक एकाग्रता का होना। यदि प्रबल मानसिक प्रवृत्ति उससे दूर फेंक दे तो तुरंत मन स्थिर कर आदर्श केन्द्र में ले आना।



हरिः ॐ

## कर्म

सामान्य मानव अपने को कर्ता मानता है मगर वास्तव में तो वह कर्म होने का गौण कारण तथा करण है। कर्म होने में अनेक कारण तथा करण होते हैं। अतः कर्म का आधार अकेले जीव (मानव) पर नहीं है।

आत्मविकास की योग्यता प्रदान करने में कर्म का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान तथा योगदान है। कर्म द्वारा ही मानव जीवन योग्य सांचे में ढाला जाता है। कर्म ही अनेक जीवों में आपसी संबन्ध बनाते हैं। कर्म से ही गुण, भाव, शक्ति, समझ, योग्यता, कौशल्य आदि विकसित होते हैं।

कर्म के साथ भक्ति हो, वह सबसे उत्तम।

कर्म वही उचित है जो भक्तिदाता तथा भक्ति का विकास करता हो । कर्म अनिवार्य है । यदि मानव केवल भक्ति ही करता रहे तो वह उचित नहीं है । लौकिक कर्तव्य की उपेक्षा कर भजन करना उचित नहीं है । सहजरूप से प्राप्त कर्तव्य, पूर्ण करना ही चाहिए।

अज्ञान तथा अहंकारी अवस्था में होनेवाले कर्म वास्तव में कर्म नहीं है।

कर्म करते समय हमें मोह न रहे। प्रभु प्रीत्यर्थ कर्म करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए क्यों कि इससे अहम्‌भाव धीरे-धीरे कम होता है। सहजरूप से प्राप्त कर्तव्य अच्छी तरह पूरा करना चाहिए और उसमें अहम्‌भाव नहीं रखना चाहिए। अहम् को गलाना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यह कार्य भावात्मक समझ

## अंतर्मुखता

सदैव अपने आप में ही तल्लीन रहकर स्वयं में अंतर्मुखता स्थापित करनी चाहिए। अन्य की ओर ध्यान कम से कम जाना चाहिए। जब भी मन में जो कुछ आवे वह हमारा स्वरूप नहीं है, ऐसा उसी वक्त विचार दृढ़ करके स्वयं को उससे अलग अनुभव करें।

अंतर्मुखता के द्वारा ज्यों-ज्यों अपनी शक्ति, इन्द्रियों, वृत्तियों करणों को समझने का प्रयत्न करेंगें त्यों-त्यों हमें अपने स्वरूप की समझ भी स्वतः आने लगेगी।

जीवन की दृष्टि तथा वृत्ति बहिर्मुखता द्वारा जगत से जुड़ी है उसे अंतर्मुखीय बनाना है।

जिसे अंतर्मुख होना है तथा भगवान की शरण में रहना है उसे चेतननिष्ठ के साथ अवश्य संपर्क रखना चाहिए तथा दृढ़तापूर्वक अंतर्मुखता का अभ्यास करना चाहिए।

मानव देह से ही यह समझा जा सकता है कि सर्व दुःख क्षय का सतपुरुषों का मार्ग अन्तर्मुख होना ही है।

अन्तर्मुख दृष्टि के साथ मन में जैसा लक्ष्य होगा वैसा ही कार्य का प्रभाव हम पर होगा। हमें अपना स्वरूप अनुभव करना है। तदर्थ सभी कुछ बदल देने में कोई कमी न रखें।

आत्म निवेदन का अभ्यास ज्यों-ज्यों दृढ़ होता जावेगा त्यों-त्यों साधक अन्तर्मुख होता जाता है।

## संयम

संयम का अर्थ है कि स्वयं के जीवन का संपूर्णरूप से रक्षण करने हेतु निश्चित की गई आचरण करने योग्य सद्कर्मों की दीवार। संयम के लिये स्वयं के प्रति कठोर बनना होता है। वास्तविक संयम हृदय में समाया रहता है। वहां शक्ति प्रदान कर वह जीवन के हर आचरण की चौकसी करता है।

संयम, साधु-पुरुषों का श्रृंगार है। संयम सांसारियों का तारणहार है।

बारं-बार तदर्थ प्रयत्न करने पर चेतनावंत संयम सिद्ध होता है। यह संयम नीतियुक्त संयम से सभी प्रकार से ऊंचा है। इसकी पहचान संयम सिवा किसी

अन्य शब्द विशेष से होनी चाहिए।

जीवन में संयम अत्यन्त आवश्यक है । सच्चा संयमी बाह्य आचरण में उसे व्यक्त करना नहीं चाहता। बारंबार व्यक्त होता संयम सच्चा संयम नहीं है ।

पार्थिव संयम की भूमिका को अभी हम पार नहीं कर पाये हैं । मगर हमें इतनी समझ अवश्य है कि संयम की परीक्षा तो आगे है । स्थूल वासनाओं को जीत कर हमें अपना संयम सूक्ष्म बनाना है।

संयम बिना का जीव अनेक वासनाओं के आवरणों से ढ़का हुआ अंधकारमय रहता है । संयमरूपी कवच धारण करने से जीव का तेजो बल बढ़ता है।

## जागृति

साधक के लिये जागृति अत्यावश्यक है । इसे मैं ''जागृति योग'' कहूंगा । जिस प्रकार की जागृत्ति उसी प्रकार की समझ । जागृति यानी सजगता से सच्ची समझ आती है।

सजगता ज्यों-ज्यों तेजोमय तथा भावात्मक बनती है त्यों-त्यों वह हमारे लिये श्री सद्गुरू बनती जाती है, अर्थात् वह हमें सच्ची समझ प्रदान कर आत्म विकास के पथ पर आगे बढ़ाती है।

जब बुद्धि में सजगता उत्पन्न होती है तब वह जीवन की अनेक उलझनों को सुलझाने का मार्ग तुरंत दिखलाती है। जागृति की भावना सतेज होने पर बुद्धि में समता आ जाती है।

यदि स्वयं में सहजरूप से जागृति न हो तो तदर्थ अभ्यास रूप प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा भी न हो पाये तो किसी उच्चात्मा (श्री सद्गुरू) की प्रेम भक्ति और श्रद्धा विश्वास पूर्वक शरणागति लेना चाहिए।

जागृति के बिना एक कदम भी आगे बढ़ना संभव नहीं है। जागृति के बिना किये गये कार्य हमारी समझ में भी न आवेंगे।

प्रभु कृपा से ही जागृति पूर्वक प्रयास होता है। जीव दशा की स्थिति का उस वक्त जागृतिपूर्वक इन्कार होता रहे और मनादिकरण तथा भावना में एकाग्रता बनी रहे तो सच्ची साधना का आरंभ होता है।

## तीव्र उत्कंठा

जो भगवत्प्राप्ति की तीव्र उत्कंठा रखता है तथा जिसका हृदय तदर्थ प्रेमपूर्ण है उसके जीवन के सभी अवसरों में भगवान नवनिर्माणरूप सर्वोच्च अवस्था स्थापित करते हैं। ऐसे अवसर पर जो जीव भगवान के वरद हस्त को हृदय में प्रेमभक्ति से पकड़कर रखता है उसका पूर्ण विकास अवश्य होता है।

हमें ऐसी उत्कंठा को सजीव तथा सचेत रखने के लिये प्राणों की वासनाओं की आहुति देते रहना है। ज्यों-ज्यों प्राणशुद्धि होगी तथा हमारा ऐसा प्रयत्न संपूर्ण हृदय से चलता रहेगा त्यों-त्यों गगनचुंबित उत्कंठा बनी रहेगी।

हरिः ॐ

## निश्चय

जीवन विकास के संकल्प को दृढ़ बनाये रखना चाहिए । जिसका निश्चय दृढ़ तथा सजीव होता है उसका मन इधर उधर नहीं जाता है । निश्चय की दृढ़ता रखनेवाला सदा जागृत रहता है। वह कभी डिगता नहीं है। निश्चय का अर्थ है कि अपने जीवन लक्ष्य पर दृष्टि, वृत्ति, व्यवहार एकाग्रता पूर्वक केन्द्रित होना तथा संपूर्ण भाव से रहना । जीवन के लक्ष्य के प्रति रचनात्मक वृत्ति के निर्णय पर तो अन्तिम क्षण (मृत्यु) तक दृढ़ रहना ही चाहिए। साधना में लगे रहने हेतु मन, बुद्धि, प्राण से दृढ़ निश्चयात्मक निर्णय हो तो साधना को वेग मिलता है। सजीव दृढ़ निश्चय सदा बना रहता है।



हरिः ॐ

## संकल्प

दृढ़ संकल्प बल, कैसा और कितना कार्य करता है तथा जीवन को कैसा विकसित करता है, इस बात को तो वही जानता है कि जिसने ऐसा दृढ़ संकल्प अपने लिये पसंद कर अपने में विकसित किया है । जिसे जीवन के सर्वोच्च मार्ग में जाना है उस जीव को ऐसा दृढ़ संकल्प करना जरूरी है।

हम जिस और जैसे नवजीवन का निर्माण करना चाहते हैं उसमें उसी प्रकार का संकल्पबल पैदा करते रहेंगे तो वह सब वैसा ही होता रहेगा।

हमारे विचारों तथा वासनाओं की असर अपने सिवाय अन्यत्र भी फैलती है । कोई भी विचार या भावउर्मि का बिना संकल्प उठना संभव नहीं है। अतः संकल्प शुद्धि हमारी महान साधना है।

हरिः ॐ

## तटस्थता

जो भी विचार, वृत्ति, भावउर्मि, भावना आदि प्रवाह अन्दर प्रकटें तब उनसे सर्वथा असंग बने रहना, इसी का नाम है तटस्थता या समता।

हमारे अन्दर उठनेवाली मालिकी हक्क की वृत्ति से हमें अपना मन वीतराग करना पड़ेगा। जो भी कोमल भावउर्मि, वृत्ति, विचार, भावनाऐं, रसवृत्ति, वासना, इच्छा, आशा आदि हमारे अन्दर जागृत हों उन्हें हम अपने से अलग देखें और उनके प्रति वैसा ही बर्ताव (उनसे हम अलग है) रखें।

तटस्थता का गुण हमें बुद्धि द्वारा यह समझाता है कि इन वृत्तियों में एकाकार हो, गर्व करना उचित नहीं है।



हरिः ॐ

## आत्म-विश्वास

आत्म-विश्वास के अभाव में जीव कुछ भी नहीं कर सकता है। जिसे उर्ध्वमार्ग में जाना है ऐसा जीव जो लाचारी की बात करे तो समझना चाहिए कि उसे आत्मविश्वास नहीं है। आत्मविश्वास तो लाचारी को उठाकर फेंक देता है। जीव की लाचारी तो उसके मन का धोखा है।

श्रद्धा तथा आत्मविश्वास के सामने लाचारी टिक नहीं सकती। श्रद्धापूर्ण बलशक्ति से ही जीवन विकास होता है।

आत्मविश्वास के बल से ही मानव जो करना है वह योग्य रूप से कर सकता है। अतः हमें अपनी साधना में आत्मविश्वास के प्रकट होने तक दृढ़ अभ्यास पूर्वक लगे रहना अति आवश्यक है।

## अभ्यास

अभ्यास का अर्थ है कि हमने जो भी अपना लक्ष्य निश्चित किया है उसका सतत चिन्तन खूब ही भाव तथा वेग के साथ सजीव बनाये रखना । जीव भाव (प्रकृति) का उर्ध्वीकरण स्वत: नहीं होता है। उसका अभ्यास करना पड़ता है।

जो भी सीखना हो उसका अभ्यास करना पड़ता है। अभ्यास, साधना में प्राण फूंकता है । अभ्यास की दृढ़ता में दिल भी उसमें शामिल हो जाता है। अभ्यास एक पद्धति बनाता है।

परमतत्त्व की सतत जागृति सामान्य मानव को नहीं रहती है । लम्बे समय का अभ्यास ही ऐसी सतत जागृति प्रदान करता है । बिना अभ्यास जागृत्ति नहीं आवेगी । अभ्यास जनित पद्धति का रुढ़ि (यंत्रवत





स्थिति) बन जाना भी संभव है।

अत: हमें अभ्यास में बारंबार बुद्धि द्वारा, कल्पनाओं द्वारा, दिल की भावनाओं के द्वारा तीव्र भावात्मक स्थिति उत्पन्न करते रहना है।

अभ्यास बनाये रखने पर परिणाम अवश्य मिलता है। हृदय में भावपूर्वक सतत जप का भी वही परिणाम मिलता है। "यह नहीं हो पाता, वह नहीं हो पाता" विचार कर दु:खी होना सर्वथा उचित नहीं है।

वैराग्य बिना का अभ्यास हो तो अभ्यास से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है । वैराग्य दृढ़ होने पर अभ्यास सजीव होता है। अत: अभ्यास प्रमुख कुंजी हैं।

हरिः ॐ

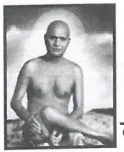

## वैराग्य

वैराग्य का अर्थ है कि किसी भी बात की आसक्ति न रहना। मन किसी बात या स्थिति से चिपटे नहीं। वैराग्य के नाम पर संसार असार है, मिथ्या है, गलत है, कचरा है, ऐसी सोच गलत है।

वैराग्य बिना अभ्यास हो तो भी अभ्यास से वैराग्य पैदा हो जाता है। "मन को वश में करना कठिन है। गीता में श्री भगवान ने कहा है कि मन को 'अभ्यास' तथा 'वैराग्य' द्वारा वश में किया जा सकता है।"

मन जहां भी जाऐ वहां से, वापस खींच लेना चाहिए, ईसी को वैराग्य कहते है।



हरिः ॐ

## आत्म निवेदन

आत्म निवेदन से समझ की (हृदयकी) नई आंख खुलती है। जीवन विकास की सद्भावना प्रकट होती है। मन एकदम हल्का हो जाता है। शांति, विश्राम और निश्चिंतता मिल जाते हैं। प्रेम लक्षणाभक्ति में इसी को आत्म निवेदन कहा है।

आत्म निवेदन का सजीव अभ्यास करते रहने से परस्पर हृदय का संबध सजीव होता है।

आत्म निवेदन में हमें जो कुछ कहना हो या व्यक्त करना हो वह अपनी भाषा में तदनुकूल भाव धारण करके कहें यही उचित है।

आत्म निवेदन के द्वारा भगवान के साथ अपना संबंध व्यक्तिगत बना देना है।

हरिः ॐ

## समर्पण भाव

समर्पणभाव जीवन संग्राम से मुक्त होने का एक मात्र रामबाण उपाय है। हमें हृदय से भगवान को अपने जीवन रथ का सारथी बना देना है। उसी भाव को दृढ़ कर सभी कार्यों के आदि मध्य और अंत में कार्य को संचालक भाव से निरखते हुऐ भगवान के चरणकमल में सर्वतोभावेन समर्पित रहना है।

समर्पण भावना की पूर्णता में ही अहम् गलता है।

जीवन विकास के साधक को तो हर क्षण ऐसा समर्पण यज्ञ अखंडरुप से चलाना चाहिए। जो भी हो तुरंत उसे श्रीचरणों में समर्पित कर देना है।



हरिः ॐ

## शरण भाव

शरण भाव की दृढ़ता में, मैं चाहूं वैसा ही हो, इस प्रकार का आग्रह नहीं रहता है। भगवान की शरणागति से दुष्ट व्यक्ति भी सज्जन हो जाता है। शरणागति में स्वयं को बचा कर न रखें। पूरा का पूरा चरणों में रख दें। उनकी शक्ति असीम है। उसमें लेने तथा देने की पूरी सामर्थ्य है।

शरण भावना को समझना तथा अनुभव करना बहुत कठिन है। जीवन विकास के मार्ग में हमारी उँगली पकड़कर ले जानेवाले श्री सद्गुरू मिले हों, उनके प्रति श्रद्धा, विश्वास, भक्ति जाग्रत हुए हों, तब संपूर्ण सज्जनतापूर्वक उनके शरणागत रहना ही सर्वोत्तम साधन है।

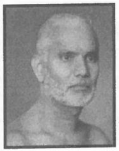

## त्राटक

त्राटक सीखने के लिये बीच में हरे रंग का गोल भाग और उसके आसपास कंकणाकार में, रंगोवाला चित्र लेवें। आंख झपकना नहीं चाहिए। पलकें भी स्थिर रखें, स्थिर दृष्टि रखें।

आंख झपकती हो तो मन से दृढ़ निश्चय का बल वहां लगावें। इस प्रकार संकल्प शक्ति पैदा कर उसे सर्वोपरि बनाना है।

निर्णय में दृढ़ता लाने के लिये, जीवन में द्वन्द्वात्मक स्थिति मिटाने के लिये तथा भाव में तल्लीनता लाने के लिये त्राटक सहायक है। त्राटक में परिपक्वता आने पर सजीव संयम सधता है।

## श्रद्धा

श्रद्धा तो नगद नारायण है। जैसे नगद रकम से आवश्यक वस्तु ली जा सकती है वैसे ही भगवान की श्रद्धा यदि हमें दृढ़ता न प्रदान करे तो वह श्रद्धा नहीं है।

भगवान की श्रद्धा एकदम किसी जीव में संपूर्णरूप से सजीव नहीं होती है।

श्रद्धा से पराक्रम उत्पन्न होना चाहिए। श्रद्धा का लक्षण यह है कि जिसमें जिसके प्रति श्रद्धा प्रकट होती है, उसे उससे जोड़ देती है। आत्म विश्वास प्रकट होने पर उसमें धीरज, साहस, हिम्मत, बल, सहानुभूति, सहनशीलता, विवेक आदि गुण आने लगते हैं।

## एकाग्रता

निर्णयात्मक तथा निश्चयात्मक एकाग्रतापूर्ण दृढ़ वृत्ति के बिना साधना मार्ग में प्रगति नहीं हो सकती है। कभी इधर कभी उधर रहनेवाली वृत्ति, मुक्ति के योग्य नहीं होती है। इस प्रकार की वृत्ति साधना की राह में, आत्मविकास में बाधक है।

मौन एकान्तवास तो लगन लगाने तथा साधना में विशेष एकाग्रता, केन्द्रितता प्राप्त करने के लिये है। इसके लिये मौन लिये बिना भी सतर्कता, उद्यम, धैर्य तथा उत्साह रखकर कार्य किया जा सकता है।

एकाग्रता होने पर मानव घबराता नहीं है। एकाग्रता होने पर मनुष्य बहुत निश्चिंत हो जाता है। एकाग्रता के कारण उसे हर उलझन से स्वतः शीघ्र





छुटकारा भी मिलता है। एकाग्रता से ही सद्‌गुण तथा सामर्थ्य की समझ आती है और योग्य बर्ताव होने लगता है।

चिन्तन के विषय से एकाकार करने की योग्यता जिसे मिल जाती है, उसे चिन्तन के विषय का मूल कारण ज्ञात हो जाता है। उसे सदा अपने सामने रखकर वह उसी में तन्मय एकाग्र बना रहता है।

हम जब अन्तर्मुख होने का प्रयत्न करते हैं और उसमें जब एकाग्रता आती है तब उस एकाग्रता में भी एक प्रकार का आनन्द होता है। आनन्द से भाव उत्पन्न होता है। इसलिये एकाग्रता का अभ्यास, भाव को विकसीत करते हुए बढाता है।

एकाग्रता का महत्त्व उसके अभ्यास से अनुभव में आता है।

हरिः ॐ

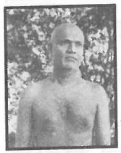

## ध्यान

जीवनविकास के लिये किये जाने वाले साधन का भाव उत्पन्न करनेवाले परिबलों में ध्यान भी एक है।

भ्रकुटी मध्य ध्यान करने से विचार प्रवाह रुक जाता है। हृदय पर ध्यान केन्द्रित करने से भाव शक्ति तथा सद्‌गुणों का विकास होता है।

ध्यान के समय मन भार रहित (शान्त एवम् प्रसन्न) रखना चाहिए। प्रार्थना में उच्चतम एवं उत्कट भाव होना भी एक प्रकार का ध्यान है। वह भावात्मक ध्यान है।

दिल में दिल की एकाग्रता से सहज होनेवाली प्रार्थना भी ध्यान है। ध्यान के सिवा अन्य समय में इधर उधर के वर्तन में रहना साधक के लिये अनुचित है।



हरिः ॐ

## भाव

जीवनविकास साधना से जो भाव आंतरिक रूप से दृढ़ हो जावे उसे व्यवहार में लाना होता है। उर्ध्व जीवन का भाव यदि कर्म में प्रतिष्ठित न हो सके तो भाव आंतरिक रूप से दृढ़ नहीं होता है।

मात्र देव-दर्शन, सेवापूजा, कथा व भजन-कीर्तन आदि के द्वारा ही भक्तिपरायण जीवन बनता है, ऐसा भ्रम हमारे समाज में बना हुआ है। समाज का ऐसा जीवन तो अज्ञानपूर्ण और तमसयुक्त है। यदि साधन का भाव दैनिक व्यवहार में न आवे तो वह यंत्रवत जीवन, जीवन ही नहीं है।

## प्रेम

उदार मानस प्रेम का प्रथम कदम मात्र है। परिस्थिति अनुसार संपर्क में आनेवाले व्यक्तियों के अनेक प्रकार के स्वभावों को सहन कर लेना प्रेम का आरंभ है। मानसिक उदारता से साधक गलत-फहमी, कटुवाक्‌बाण, अन्यायपूर्ण व्यवहार, नीरस-उदासीन अथवा घमंडभरा व्यवहार, झूठे आरोप और कठोरवाणी सह लेता है। मगर सच्चा प्रेमी तो इन सभी को सहज शांति से स्वीकार कर लेता है। वह इन सभी से दु:खी नही होता। अगर सच्चा प्रेम है तो अनेक शारीरीक एवं मानसिक समस्याओ का स्वीकार विचलित हुए बिना शांति से होता है।

## सद्‌गुण सद्‌भाव का आदर

सद्‌गुण और सद्‌भाव का आदर करने से वे सद्‌गुण-सद्‌भाव हमारे अन्दर स्थापित होते हैं। इन सद्‌गुणों और सद्‌भावों की स्थापना जीवन विकास का बहुत ही बड़ा लक्षण है।

गुणों के साथ उनकी शक्ति स्वत: उनमें रहती है। अन्य जीव के सद्‌गुणों की और सहजरूप से आकर्षण हो तो समझे कि हममें सद्‌भाव की अभिरुचि प्रकट हुई है। सद्‌गुणों का आकर्षण और आदर यदि जीवन में अभिव्यक्त न हो तो साधक गलत मार्ग पर है।

हरिः ॐ

## दुर्लभ मानव शरीर

हमारा मानव शरीर ही परमात्म ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन है। मानव शरीर सिवा अन्य किसी योनि में ऐसा ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है।

मानव शरीर द्वारा चेतन को जाना जा सकता है। अन्य किसी भी योनि के शरीर से ऐसा संभव नहीं है। द्वंन्द्व तथा गुणों से यह शरीर बना है। आमने-सामने दो पहलुओं के बीच में जीवन होता है। इन आमने-सामने रहते पहलुओं में संघर्ष होता है। अतः चेतन का मूल प्राप्त करने (ज्ञान प्राप्त करने) मानव शरीर में ऐसी रचना की गई है। देव योनि में आनन्द है, यह बात सत्य है मगर वहां विकास नहीं है। देवों को भी मुक्ति दुर्लभ है। देवों को मुक्ति के लिये मानव शरीर धारण करना पड़ता है।



हरिः ॐ

## मृत्यु के बाद

मानव शरीर छोड़ने के बाद शरीर के साथ तादात्म्य लगा रहने से जीव शरीर के इर्द-गिर्द रहता है। तेरह दिनों तक जीवात्मा उस वातावरण में, जिनसे काम, क्रोध, आसक्ति पूर्ण जीवदशा भाव से उत्कट संबध रहा है, वहां रहता है। वह सुनता है मगर बोल सकता नहीं है। वह देखता भी है अतः इन तेरह दिनों में शोक तो जरा भी नहीं करना चाहिए। रोना नहीं चाहिए। उन दिनों को उस जीवात्मा की शांति, कल्याण के लिये प्रार्थना में बितावें तो उस जीवात्मा को बड़ी शांति मिलती है।

मरते वक्त, शरीर छूटते समय शरीर से जब चेतन चला जाता है, जीव निकल जाता है तब यदि भगवान

का नाम लेवें तो उत्तम गति प्राप्त होती है । मानव शरीर धारण करने के बाद अन्य किसी निम्न योनि में नहीं जा सकता है । हां, वैसे गुणधर्म आते है, मगर शरीर तो मानव का ही रहता है।

मानव के देहावसान के बाद तेरह दिनों में गतात्मा की स्मृति सतेज रख कर जो कुछ भी पुण्य सत्कार्य होता है, तो उसका अनुभव गतात्मा को होता है।

जो जीवन विकास करना हो तो जीवित अवस्था में ही स्वयं ही ऐसा दान उक्त हेतु तथा भाव के साथ करना चाहिए।

''मातृ-पितृ दोष'' के लिये नारायणबलि व्यर्थ की बात है। यदि 'मातृ-पितृ दोष' के विचार आते हों तो उस वक्त दिल से प्रार्थना उत्तम उपाय है।





## विनयवाणी

प्रभुजी चरण शरण में राखो जी, पाय लागूं ।
रसियाजी अन्तर्यामी ! मेरे हृदय कमल के स्वामी
अलबेला प्रेमी नामी रे, पाय लागूं ।
शरणागत वत्सल जानुं, मेरी अन्तर्कथा सुनाऊं
पर मन में मैं घबराऊं रे, पाय लागूं ।
अपूर्णता मेरी मिटावो, अपने निकट लावो
चरणों में स्थान दिलावो रे, पाय लागूं ।
प्रियतम मैं साधन हीना, दिल प्रेमभरा तुझे दीन्हा
सिर तेरे चरणों में किन्हा रे, पाय लागूं ।
बालक में जोर तो कुछ ना, जो कुछ है केवल रोना
ऐसे जोर से मुझे तैरना रे, पाय लागूं ।

## आरती : पूज्य श्रीमोटा

### हिन्दी पद्यमें भावानुवाद

ॐ शरण चरण की ले लो,
प्रभुजी शरण चरण की ले लो,
अधम उद्धार करो जी (२),
कृपा दृष्टि दे दो... ॐ शरण ॥
मन, वाणी और भाव,
मेरे कर्मो में उतरे (२) प्रभुजी...
भाव-कर्म की ऐकता (२),
जीवन में करदो... ॐ शरण ॥
दिल में रहे सद्भाव सदा,
जो मुझे मिल जावे (२) प्रभुजी...
हो अपमान मेरा कदाचित् (२),





फिर भी प्रेम बढो... ॐ शरण ॥
बुरे विचारों औ भावोंका,
उर्ध्व करण करने (२) प्रभुजी...
सदा ही दिल यह तड़पे (२)
प्यार तेरा पीने ... ॐ शरण ॥
मन के सभी विचार,
अरु प्राणों की वृत्ति (२) प्रभुजी...
बुद्धि की सब शंका (२),
चरणों में लीन करो... ॐ शरण ॥
जैसा भी मैं तेरा,
मेरे दंभ को दूर करो (२) प्रभुजी...
सहज सरल यह जीवन हो (२),
यह सद्भाव भरो... ॐ शरण ॥

दिल से होऊँ जैसा,
वैसा ही बाहर रहुं (२) प्रभुजी...
पाखंड न हो जीवन में (२),
सत्य की और बढ़ूं... ॐ शरण ॥
सद्‌गुण और सद्‌भाव में,
दिल मेरा सदा रहे (२) प्रभुजी...
सद्‌गुण भाव औ भक्ति (२),
दिल में बहती रहे... ॐ शरण ॥
मन मति प्राण मेरे,
तेरे प्यार में गल जावें (२) प्रभुजी...
दिल में तेरी भक्ति (२),
हरदम लहरावें... ॐ शरण ॥

॥ हरिःॐ ॥





पू. श्रीमोटा द्वारा गुजराती में रचित आरती "ओम शरण चरण लेजो" का हिन्दी भावार्थ जो पुस्तक "पू. श्रीमोटा-एक संत (जीवन चरित्र और कार्य)" में छपा है, इस प्रकार हैं :-

## आरती का भावार्थ

**पूज्य श्रीमोटा रचित आरती का भावार्थ :**

ॐ कार रूप हे प्रभु ! मैं तेरी शरण में आया हूँ, मुझे तेरे चरणों में ले ले, मैं पतित तेरे द्वार पर आया हूँ, मेरा उद्धार कर, मुझे बचा ले, मुझे तूँ अपने हाथों से उठाकर अपने हृदय से लगा ले। ॥ध्रुव॥

हे प्रभु ! मेरे मन में और वाणी में भाव निर्माण होकर वह भाव मेरे कर्मो में प्रगट होने दे और मेरा

मन, वाणी और हृदय इन तीनों को तूँ अपनी कृपा से एक कर।...ॐ शरण चरण... (१)

हे प्रभु ! मुझसे मिलने आनेवाले हर एक के प्रति मेरे हृदय में सद्भाव ही उपन्न होने दे, और जहाँ (जिनसे) अपमान हुआ
हो, वहाँ भी (उनके प्रति भी) मेरे अंतर में भाव की ही वृद्धि होने दे। ...ॐ शरण चरण ... (२)

मेरे अंतर में रही हुई निम्न प्रकार की वृत्तियों का ऊर्ध्वगमन करने के लिए, हे प्रभु, तेरी कृपाशक्ति के बल से ही मैं पुरुषार्थ करके उसके द्वारा तेरे चरणों में शरणागति स्वीकार सकूँ ऐसा कर। ...ॐ शरण चरण ... (३)

हे प्रभु ! मेरे मन में रहे हुए सब विकार, प्राण में से





बहनेवाली सब वृत्तियाँ और बुद्धि में निर्माण होनेवाली सब शंकाएँ तेरे चरणकमलों में गल जाएँ, ऐसा कर। ...ॐ शरण चरण ... (४)

हे प्रभु ! 'मैं जैसा हूँ वैसा' खुद-स्वयं को देखने के लिए, स्पष्ट रूप से परख लेने के लिए, मेरी बुद्धि खुली (रिक्त) कर। ...ॐ शरण चरण ... (५)

हे प्रभु ! मेरे हृदय में तूँ जो चैतन्यरूप में भरा हुआ है, उसकी प्राप्ति के लिए जीवन में आचरण हो, और चैतन्य से दूर। चरण ... (६)
ले जानेवाला-निम्नगामी ऐस आचरण मुझसे न हो, ऐसी बुद्धि तूँ मुझे देना। ...ॐ शरण चरण ... (६)

हे प्रभु जहाँ-जहाँ गुण और भाव है, वहाँ वहाँ मेरा हृदय स्थिर होने दे और उन गुणों के प्रति और उन

भावों के प्रति मेरे हृदय में भक्ति का संचार होने दे। ...ॐ शरण चरण ... (७)

हे प्रभु ! तेरे प्रति उत्पन्न हो गये हुए 'भाव' में मेरा मन, बुद्धि और प्राण, ये सब पिघल जाने दे और हृदय में तेरी ही भक्ति की बाढ़ आने दे। ...ॐ शरण चरण ... (८)

-मोटा

॥ हरिः ॐ ॥

## पूज्य श्रीमोटा : अनुवादक की भावांजली

ना पतला है, न तो मोटा है, संत विलक्षण मोटा है।
जग में नहीं जिसका जोटा है,
ऐसा संत विलक्षण मोटा है।
जीवन की राह बतलाता है,
नहिं समाज को बिसराता है,
देश प्रेमभी सिखलाता है,
प्रेम भरा एक लोटा है,
ऐसा संत विलक्षण मोटा है ।
मौनी हो मौन सिखाता है,
फिर मौन को मुखर बनाता है,
जग हित में उसे लुटाता है,

देने में नही उसे टोटा है,
ऐसा संत विलक्षण मोटा है ।
प्यारे मोटा फिर आजाओ,
जन जन के भाग जगा जाओ,
मसाल मानवता की जला जाओ,
न रहें कोई मानव खोटा है,
ऐसा संत विलक्षण मोटा है ।

## हिन्दी संस्करण के प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| (१) पूज्य श्री मोटा एक संत | : मूल्य : रु. २५/- | मात्र |
| (२) केन्सर का प्रतिकार | : मूल्य : रु. १०/- | मात्र |
| (३) सुख का मार्ग | : मूल्य : रु. १०/- | मात्र |
| (४) बालकों के मोटा | : मूल्य : रु. ०५/- | मात्र |
| (५) प्रसादी | : मूल्य : रु. ०५/- | मात्र |

नोट : हरिःॐ आश्रम, सूरत द्वारा गुजराती भाषा में पूज्य श्रीमोटा की लगभग १६५ पुस्तिक/पुस्तिकाओं का प्रकाशन हुआ है । इन का हिन्दी-भाषा अनुवाद का कार्य चल रहा है व समय-समय पर नये प्रकाशन प्रकट होते रहेंगें ।

अधिक जानकारी हेतु हरिःॐ आश्रम, सूरत के पते पर संपर्क करें ।

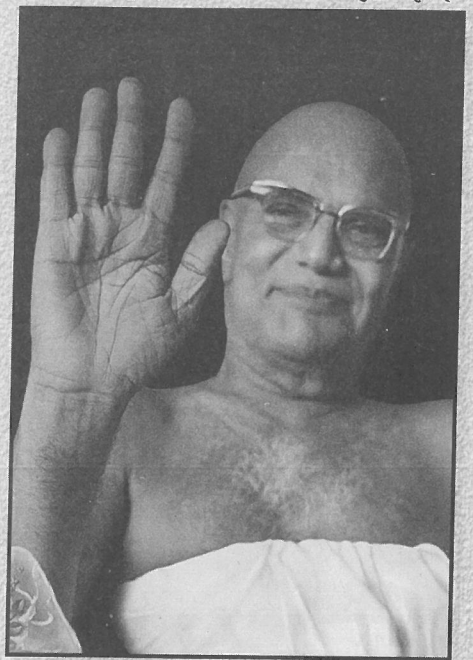

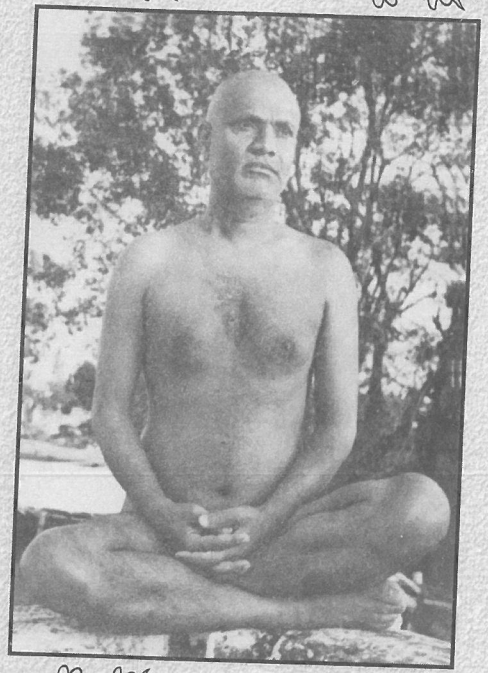

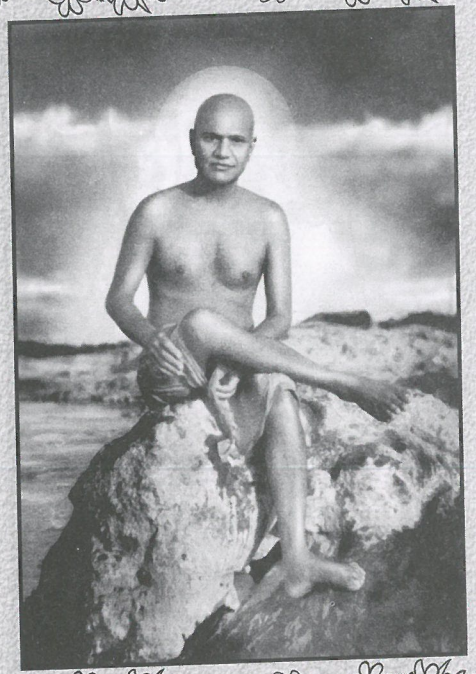

## श्री सद्‌गुरू वृंद, जिन्होंने पूज्य श्रीमोटा पर कृपा की :

श्री बालयोगीजी

श्री केशवानंदजी
धुणीवाले–दादा

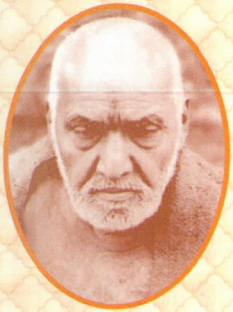

श्री उपासनी बाबा

श्री सांईबाबा

हरिःॐ आश्रम–नडियाद, पूज्य श्रीमोटा की बैठक

हरिःॐ आश्रम–सुरत, पूज्य श्रीमोटा की बैठक